मज़दूर, लेबर कोड्स का विरोध क्यों कर रहे हैं (2)?

'औद्योगिक सम्बन्ध कोड'

सत्यवीर सिंह

"श्रम विभाग, समवर्ती सूचि में आता है. मज़दूरों के विभिन्न पहलुओं पर राज्यों द्वारा बनाए गए कानूनों की तादाद 100 और केंद्र द्वारा बनाए गए क़ानून 40 हैं. इतने ज्यादा और प्राचीन हो चुके क़ानून होने की वज़ह से, कर्मचारियों को बहुत असुविधा होती है और मालिकों को भी उनके अनुपालन का ब्यौरा देने में कितनी कठिनाई होती है.

इसलिए मज़दूर और मालिकों के काम को सरल बनाते हुए, इन सारे कानूनों को तीन लेबर कोड्स में बदला जा रहा है. द्वितीय श्रम आयोग ने भी ऐसी ही सिफारिशें की हैं." सितम्बर 2020 में केन्द्रीय श्रम मंत्री ने 3 लेबर कोड्स; 'औद्योगिक सम्बन्ध', 'सामाजिक सुरक्षा' तथा 'व्यवसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं काम करने की स्थिति', सम्बन्धी बिल, संसद में प्रस्तुत करते हुए ये बयान दिया था. पढ़कर लगेगा, मोदी सरकार, मज़दूरों की परेशानियों का कितना ख़याल रखती है!! उससे, उनकी दिक्कतें देखी नहीं जातीं!! जहाँ तक रवीन्द्र वर्मा की अध्यक्षता में, 2002 में, वाजपेयी सरकार द्वारा गठित, दूसरे राष्ट्रीय श्रम आयोग की सिफारिशों का सवाल है;

देश का बच्चा-बच्चा ये हकीक़त जान चुका है कि ये सरकारी आयोग बिलकुल वही सिफारिशें देते हैं, जो सरकार चाहती है. पहला राष्ट्रीय श्रम आयोग 1966 में, सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश पी बी गजेंद्रगडकर की अध्यक्षता में नियुक्त हुआ था, जिसने सारी सिफारिशें मज़दूरों के पक्ष में दी थीं, जैसे मज़दूरों को अस्थाई नहीं स्थाई नियुक्तियां दी जाएँ, जिससे वे मज़दूर हित में बने सभी कानूनों का लाभ ले सकें, विकास में अपना योगदान दे सकें.

2002 में, दूसरे श्रम आयोग के अध्यक्ष वर्मा जी ने ठीक उलट सिफारिशें दीं!! 1966 से 2002 में क्या फ़र्क आ गया? दोनों राष्ट्रीय श्रम आयोग, दो विपरीत बातें क्यों कर रहे हैं? ये कैसे विद्वान हैं? ये कैसी ठगी है? कौन सच्चा और कौन झुटा है? उत्तर आसान है, पूंजीपति मालिक वर्ग की ज़रूरतें 1966 में उत्पादन बढ़ाने की थीं, 2002 में जब आयोग की सिफारिशें आई थीं और उससे भी ज्यादा 2020 में जब वे सिफारिशें लागू हो रही हैं, इज़ारेदार और वित्तीय पूंजी कॉर्पोरेट मालिकों की ज़रूरतें उत्पादन बढ़ाने की हैं ही नहीं. उत्पादन से गोदाम भरे पड़े हैं, लोगों का कंगालीकरण इस हद तक हो चुका है कि कुछ भी ख़रीदने की हैसियत नहीं बची. अब तो 'विकास' सट्टेबाजी से हो रहा है, बहुमूल्य सरकारी इदारों को कौड़ियों के भाव ख़रीदने से हो रहा है. ये 'रोज़गार रहित विकास (jobless growth) का युग है. अब मज़दूरों की क्या ज़रूरत? अब मज़दूरों को स्थाई क्यों करना? अब तो 'हायर एंड फायर चाहिए'!! जहाँ तक मोदी सरकार के इस झूट की बात है कि मज़दूरों के क़ानूनों की तादाद बहुत ज्यादा है, सरकार अच्छी तरह जानती है कि इंग्लैण्ड और अमेरिका में यहाँ से कहीं ज्यादा श्रम क़ानून हैं.

2 अगस्त 2019 को वेतन कोड बिल पास होने के बाद, बाक़ी 3 श्रम कोड को संसद की स्थाई समिति को सोंप दिया गया था. सभी संसदीय इकाइयाँ, आजकल, या तो सत्ता पक्ष के प्रभुत्व में हैं या फिर ठप्प पड़ी हैं.

इस मामले में भी श्रम मंत्री ने संसद को बताया कि संसद की श्रम सम्बन्धी स्थाई समिति के कुल 233 सदस्यों में से 174 ने ये बिल मंजूर किया है. भाजपाईयों और उनकी लगुए-भगुए दलों की सहमति मिल गई, मतलब हो गया! अधिकतर मामलों में ये समितियां अपने 'गहन मंथन' से, क़ानून जिस स्वरूप में प्रस्तुत हुआ है, उसे और ज्यादा जन-विरोधी बनाने का काम करती हैं. 'औद्योगिक सम्बन्ध (Industrial Relation)' कोड में मज़दूर- विरोधी क्या बदलाव हुए हैं, वह तो जानना बनता ही है. उससे पहले ये जानना भी आवश्यक है कि 2019 में, वेतन कोड क़ानून को संसद द्वारा पारित कर देने के बाद, बाक़ी तीन कोड को वापस लेकर, 2020 में पारित किया गया. उस एक साल में उनमें क्या बदलाव किया गया?

2019 में सरकार का कहना था, कि किसी भी सार्वजनिक निकाय से सम्बंधित किसी भी मामले में फैसला लेने के लिए, केंद्र सरकार को ही सारे अधिकार रहेंगे. बाद में सरकार को याद आया कि सरकारी निकाय तो सब बिकने जा रहे हैं, पता नहीं उसके बाद, उसके मालिक 'सेठ जी' उनकी बात मानें या ना मानें!! इसलिए उसने ये बदलाव किया कि भले किसी सरकारी निकाय में सरकार का मालिकाना 50 प्रतिशत से नीचे ही क्यों ना चला गया हो, बदले हुए लेबर कानूनों के मामले में, फैसला लेने के सारे अधिकार केंद्र सरकार के पास ही रहेंगे.

दूसरा बदलाव, पहले से भी ज्यादा दिलचस्प है. 2019 के बिल में ये प्रावधान था कि रेलवे, खनन, दूर-संचार एवं बैंकिंग क्षेत्र में सारे अधिकार केंद्र सरकार के पास ही रहेंगे. फिर शायद याद आया, कि ये सरकारी विभाग ही तो बिक्री काउंटर पर सबसे आगे रखे हुए हैं. जल्दी ही ये निकाय, सरकारी की जगह मुकेश भाई और गौतम भाई के निजी संस्थान बन जाने वाले हैं!! किसी सरकारी संस्थान के बिक जाने के बाद भी, लेबर कानूनों के मामले में, उस पर केंद्र सरकार का ही अधिकार ही रहे, इसके लिए ये बदलाव किया गया कि अगर केंद्र सरकार किसी उद्योग को 'नियंत्रित उद्योग (Controlled Industry)' घोषित कर देती है, तो निजी हो जाने के बाद भी लेबर मामलों में केंद्र सरकार ही निर्णय लेने की हक़दार होगी.

सरकार किसी भी उद्योग को, उनके निजी हो जाने के बाद भी 'जन-हित' में 'नियंत्रित उद्योग' घोषित कर सकती है. मतलब,'जन-हित' का भ्रम सरकार अभी भी बनाए रखना चाहती है. 'जन-आक्रोश' को बिलकुल नज़रंदाज़ करने का जोखिम नहीं लिया जा सकता!!

तीसरा बदलाव सबसे अहम और दिलचस्प है. अपराध की 'कमपौन्डिंग' या 'कॉमपौंडेबल अपराध' का मतलब होता है, वह अपराध, जिसे मुक़दमा चलाए बगैर ही, कुछ जुर्माना या ग़लती मान लेने पर ही रफ़ा-दफ़ा कर दिया जा सके. कारखाना मालिक, जब मज़दूरों के अधिकारों का दमन या ग़बन, जैसे पीएफ़ का पैसा मज़दूर से वसूलने के बाद भी, सरकारी पी एफ खाते में जमा ना करना आदि के क़सूरवार पाए जाते हैं तब, 2019 के बिल के अनुसार वे तब ही अपराध को कॉमपौंडेबल कराने के पात्र बनते थे, मतलब तब ही वह मुक़दमा रफ़ा-दफ़ा किया जा सकता था, जब उस अपराध में जेल की सज़ा अथवा जेल व जुर्माने की संयुक्त सज़ा ना बनती हो.

ऐसी स्थिति में मालिक को कुल देय रक़म का 50 प्रतिशत तुरंत जमा करने पर 'कॉमपौंडेबल' की सुविधा उपलब्ध थी.

2020 श्रम बिल में इस प्रावधान को बदल डाला गया. अब मालिकों के ऐसे अपराधों को भी कॉमपौंडेबल किया जा सकता है जिनमें अपराधी मालिक को 1 साल की सज़ा अथवा सज़ा व जुर्माना हो सकता है.

उन मामलों में, जहाँ जेल की सज़ा नहीं बल्कि जुर्माना ही होना था, कुल देय रक़म का 50 प्रतिशत तुरंत ज़मा करने पर और उन अपराधों में जिनमें 1 साल की सज़ा होने का प्रावधान था, कुल रक़म का 75 प्रतिशत ज़मा करने पर मामला कॉमपौंडेबल, मतलब रफ़ा-दफ़ा कर दिया जाएगा. अपराधी सरमाएदार, मोदी सरकार को यूँ ही, बेवज़ह, इतनी मोहब्बत नहीं करते, यूँ ही अकारण चुनाव बौंड ख़रीदकर भाजपा को अर्पित नहीं करते. उसकी ठोस वज़ह मौजूद है. मालिक को किसी भी अपराध करने से, सिर्फ़ जेल जाने के डर से ही रोका जा सकता है.

जुर्माने से वे बिलकुल नहीं डरते क्योंकि वे जुर्माना कभी नहीं भरते. सिविल मुक़दमा अनंत काल तक खींचा जा सकता है, पैसे वाले लोग जानते हैं. औद्योगिक सम्बन्ध कोड मज़दूरों को गुलाम बना देगी, यह उनके आत्म-सम्मान पर हमला है ट्रेड यूनियन क़ानून, 1926; औद्योगिक रोज़गार (स्थाई आदेश) क़ानून; 1946 तथा औद्योगिक विवाद क़ानून, 1948; को समाप्त कर, मोदी सरकार, सितम्बर 2020 में औद्योगिक सम्बन्ध कोड लाई. ये तीनों क़ानून मज़दूरों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण थे क्योंकि इन्हीं के तहत वे संगठित होकर, सामूहिक सौदेबाज़ी के ज़रिए, अपने लिए सम्मानजनक सेवा-शर्तें मनवाते आए थे. अगर मालिक ना माने, अड़ियल टट्टू बना रहे तो, मज़दूर अपने संगठन के बल पर अन्दोलानात्मक कार्यवाही कर उसे मानने को मज़बूर कर सकते थे.

मतलब, वे मालिक से, अपने अधिकार खैरात या मेहरबानी के तौर पर नहीं, बल्कि हक़ से हांसिल कर सकते थे. इन कानूनों को ख़त्म कर 'औद्योगिक सम्बन्ध कोड' का झुनझुना थमा देना, मज़दूरों के सम्मान पर, उनकी ख़ुद्दारी पर घातक हमला है.

1) मालिक द्वारा मनमानी छंटनी करने के दायरे में लगभग सभी औद्योगिक प्रतिष्ठानों को ला दिया गया है. पहले ये छूट सिर्फ़ उन्हीं कारखानेदारों को ही थी जहाँ 100 या उससे कम मज़दूर काम करते हों. अब यह मनमानी करने की आज़ादी हर उस उद्योगपति को रहेगी, जहाँ 300 तक मज़दूर काम करते हैं. औद्योगिक सम्बन्ध कोड, 2020 के अनुच्छेद 77(1) के अनुसार जिस कारखाने में 300 या उससे

कम मज़दूर काम करते हों, वहाँ, मालिक जब चाहे 'हायर एंड फायर' कर सकता है. चंद गिनती की बड़ी कंपनियों को छोड़कर सभी उद्योग 'हायर एंड फायर' के दायरे में आ गए हैं.

मज़दूरों की छंटनी अथवा कारखाना बंद करने से पहले सरकार से अनुमति लेने की कोई ज़रूरत नहीं. जो 300 से ज्यादा मज़दूरों वाले कारखाने हैं, वहाँ भी ये 'सुविधा' जल्दी ही आ जाएगी. वैसे भी कारखानेदार बहुत काइयां होते हैं. वे जान गए हैं कि मोदी सरकार की मंशा क्या है, इसलिए सभी उद्योग ये 'सुविधा' बेरोकटोक भोग रहे हैं.

2) हड़ताल पर जाना है तो 60 दिन पहले लिखित नोटिस देना होगा. अगर वह विवाद, किसी ट्रिब्यूनल में चल रहा है, तब तो हड़ताल पर जाने का 60 दिन का नोटिस भी तब ही दिया जा सकेगा, जब ट्रिब्यूनल का फैसला आ जाए. यदि, सरकार ने उस उद्योग को 'जन उपयोग सेवा (Public Utility Services) घोषित कर दिया है, तब तो हड़ताल पर जाना ही अपराध होगा. पहले ऐसी परिस्थिति में भी 6 सप्ताह का नोटिस देकर हड़ताल पर जाया जा सकता था.

3) अगर किसी उद्योग में एक से अधिक ट्रेड यूनियन हैं तो, उसी ट्रेड यूनियन को मालिकों या प्रबंधन से वार्तालाप करने का अधिकार होगा जिसके सदस्यों की संख्या कुल कर्मचारियों का 51त्न है. दूसरी ओर, मालिक, किसी एक कर्मचारी से भी वेतन-समझौता कर सकते हैं और घोषणा कर सकते हैं कि वेतन समझौता तो संपन्न हुआ! अगर उद्योग में कोई भी यूनियन ऐसी नहीं है जिसकी सदस्य संख्या कुल का 51त्न है तो 'मज़दूर कौंसिल' का गठन किया जाएगा जिसमें 20त्न मज़दूर शामिल रहेंगे, जो कि मालिक द्वारा चुने जाएँगे.

4) यूनियन की बजाए 'शिकायत निवारण कमेटी' बनाने पर जोर दिया जाएगा जिसमें 10 सदस्य होंगे; 5 मज़दूर प्रतिनिधि और 5 मालिक द्वारा चुने गए लोग. मज़दूर अपनी शिकायत इस कमेटी को देगा और उसका निवारण 45 दिन तक ना हो पाने की अवस्था में ट्रिब्यूनल में अर्ज़ी लगाएगा. जो काम यूनियन द्वारा मेज पर आमने-सामने बैठकर हो जाता था, उसे क़ानूनी पचड़ों में उलझाया जाएगा. क़ानूनी व्यवस्था हमारे देश में, मामले कितनी जल्दी निबटाती है, सब जानते हैं. वह मामला फिर अनंत काल तक चलता जाएगा. वैसे भी सरकारों ने ट्रेड यूनियन रजिस्ट्रेशन का काम अघोषित रूप से बंद ही किया हुआ है. रजिस्टर भी हो जाए तो ट्रेड यूनियन की सदस्य संख्या 100 या कुल मज़दूरों के 10त्न से कम कभी नहीं आनी चाहिए वर्ना उसकी मान्यता रद्द कर दी जाएगी. ट्रेड यूनियनों द्वारा जमा की जाने वाली सूचनाओं की तादाद इस तरह बढाई गई है कि उन्हें चलाना ही असंभव हो गया है. मतलब मालिकों की पिट्ठू यूनियनें ही रहेंगी जिनका होना, ना होने से भी ज्यादा घातक है.

5) 'बदली मज़दूर', 'विशिष्ट मज़दूर', 'ठेका मज़दूर', 'अपरेंटिस मज़दूर', 'नियत-अवधि मज़दूर' आदि नाम से छंटनी होने पर मिलने वाली भरपाई से वांछित करने और मालिकों को इसकी छूट देने के प्रावधान भी औद्योगिक सम्बन्ध कोड में बाक़ायदा मौजूद हैं.

6) औद्योगिक कोड लागू होने के बाद, मालिक द्वारा किसी कानून को मानने से मना करने पर, उसके ख़िलाफ़ सुनवाई का अधिकार मुख्य न्यायिक अधिकारी अथवा प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट को ही होगा, भले पीनल कोड में कुछ भी क्यों ना लिखा हो. मतलब लेबर कोर्ट्स बंद ही हो जाएंगी और मज़दूरों को त्वरित न्याय की उम्मीद हमेशा के लिए छोड़ ही देनी होगी.

8 अप्रैल 1929 को, शहीद-ए-आज़म भगतसिंह और उनके प्रिय कॉमरेड बटुकेश्वर दत्त ने अंग्रेजों द्वारा लाएगए क़ानून, 'ट्रेड डिस्प्यूट बिल' के ख़िलाफ़, दिल्ली केन्द्रीय असेम्बली में, 'इंक़लाब जिंदाबाद' का नारा लगते हुए, ये कहकर बम फोड़ा था कि 'बहरों को सुनाने के लिए धमाकों की ज़रूरत होती है'. वह ट्रेड डिस्प्यूट बिल, मज़दूरों के विरोध प्रदर्शन करने के अधिकारों को छीन लेने वाला और मज़दूरों द्वारा हड़ताल पर जाने से 15 दिन पहले नोटिस देने की मांग करता था. मोदी सरकार द्वारा लाए गए लेबर कोड, खासतौर पर औद्योगिक विवाद कोड, उससे कहीं ज्यादा मज़दूर विरोधी हैं. सितम्बर 2020 को संसद द्वारा पास कराए इन कानूनों को लागू करने की हिम्मत मोदी सरकार अभी तक नहीं जुटा पाई है.

पहले ये, 1 जुलाई 2022 से लागू होने थे, उसके बाद ये तारीख 1 अक्टूबर हुई, अब 1 जनवरी 2023 सुनने में आ रही है. मज़दूरों को, असीम कुर्बानियों से हांसिल उनके अधिकारों को छीनने के सरकारी दुस्साहस का निर्णायक जवाब देना होगा. जैसे संसद द्वारा नया क़ानून बनाकर, 3 कृषि बिल वापस हुए, बिलकुल उसी अंदाज़ में ये चारों लेबर कोड्स वापस होने चाहिएं. ना सिर्फ़ पुराने अधिकार बहाल होने तक बल्कि मज़दूर हित में नए मज़दूर क़ानून बनाने के लिए मज़दूरों ने बीड़ा उठाना है. लेबर कोड रद्द कराने के लिए, 13 नवम्बर को राष्ट्रपति भवन पर होने वाले मासा राष्ट्रीय विरोध तहरीक़ को क़ामयाब बनाना है.